ॐ

गङ्गास्तोत्र तथा नारायणस्तोत्र

प्रकाशक

नरपति क्षत्रियकुल-भूषण

राजकुमार कुँवर चरतसिंह

साहनपुर स्टेट,

(ज़िला बिजनौर यू० पी०)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग में मुद्रित

१९३० ।

[मूल्य ≡)

नोट—यह पुस्तक तथा अन्य धार्मिक और वैदिक पुस्तकें (जो कि शीघ्र ही प्रकाशित होंगी)

मिलने का पता—

विश्वम्भरदत्त शास्त्री

"उपाध्याय एन्ड कम्पनी"

साहनपुर स्टेट, बिजनौर

"प्रथम भूमिका"

(पुस्तक-रचयिता का परिचय)

"स्रोतसामस्मि जाह्नवी"

"भगवद्‌गीता"

गीता में भगवान् कृष्णचन्द्र का आदेश है कि नदी स्रोत इत्यादि बहनेवाली वस्तुओं में मैं गङ्गा हूँ।

भक्तवृन्द! हिन्दू-जाति के साहित्य में यों तो स्तोत्रपाठ इत्यादि धार्मिक पुस्तकों की कमी नहीं, और गङ्गा के विषय में भी अनेक उत्तमोत्तम स्तोत्रपाठ पुस्तकें रम्य और ललित अपने साहित्य में विद्यमान हैं, परन्तु गङ्गा को वेदान्त-ग्रन्थों में प्रतिपादित परब्रह्म की समता देकर ब्रह्म का सारूप्य करके इस स्तोत्र में दिखलाना वेदान्त के प्रतिभट विद्वान् इन्हीं संन्यासी का कार्य था जिनका परिचय पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जाता है।

पाठक महानुभाव! अंबाला ज़िले के अन्तर्गत जगाधरी नगर के उत्तर कोने में हिमालय की उपत्यका के मध्यगत सिन्धुवन नामक वन में एक आदिवद्री नामक अति प्राचीन आश्रम है. जिसकी महिमा पुराणग्रन्थों में वर्णित है, विशेष विस्तार न करके हम यहाँ इतना ही कहना उपयुक्त समझते हैं कि इस आश्रम की वनभूमि में एक महात्मा दीर्घ काल से विचरण करते रहे जो सिद्ध पुरुष और योगिराज थे, आपने विचरण करते करते किसी समय दैवी व मानुषिक प्रेरणा तथा अपने आत्मिक अनुभव की किसी विशेष घटना से

प्रेरित होकर इस आश्रम के उस मन्दिर पर अपना अधिकार किया जो आश्रम तथा मन्दिर इस प्रान्त के यात्री साधु-महात्माओं से विदित है।

इन उपरोक्त योगि-राज सिद्ध-पुरुष महात्मा की जन्मभूमि देश इत्यादि का कुछ पता नहीं, बस इनके विषय में हम पाठकों को इतना ही परिचय देना जानते हैं कि आपका नाम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य श्री० १०८ स्वामी पुरुषोत्तमाश्रमजी था, आपके दो शिष्य हुए, एक बड़े थे जिनके विषय में परिचय देना प्रकरणगत नहीं, दूसरे छोटे थे जिन्हें स्वामी (पुरुषोत्तमाश्रमजी) जी ने अपने देहावसान समय अधिकारी जानकर इस आश्रम और मन्दिर का प्रभुत्व समर्पण कर अधिकारी नियुक्त किया. बस ये ही महात्मा इस स्तोत्र के रचयिता हैं।

पाठक! आपके विषय में परिचय इस प्रकार है कि आपका जन्मदेश पूर्व प्रयाग के निकटवर्ती कोई ज़िला था, ग्राम इत्यादि क्या था कुछ कह नहीं सकते, कभी कभी महाराज के मुख से कहे वाक्यों से पता चलता रहा कि आप गृहस्थी सरयूपारी ब्राह्मण थे। आपने काशी में कुछ दीर्घकाल रहकर व्याकरण, न्याय, वेदान्तादि शास्त्रों का पूर्णतया अध्ययन किया था, और आप इन शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, आपके ज्येष्ठ दो भ्राता किसी राजकीय विशेष अधिकारों पर नियुक्त थे, आप थोड़ी ही अवस्था में गृहस्थी परित्याग कर हरिद्वार, हृषीकेश आदि स्थानों की ओर आये, आप ब्रह्मचर्याश्रम में रहे, संन्यास-दीक्षा की लालसा में विचरण करते करते कभी आप उसी आश्रम में जा निकले जिसके विषय का परिज्ञान पाठक ऊपर कर चुके हैं, इस आश्रम में पहुँच कर आपने उन्हीं श्री १०८ स्वामी पुरुषोत्तमाश्रमजी से संन्यास

की दीक्षा ग्रहण की जिनका परिचय पाठकों को परिज्ञात है। स्वामीजी महाराज ने भी योग्य, अधिकारी जानकर संन्यास की दीक्षा दी तथा आपका नाम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य श्री० १०८ स्वामी अच्युताश्रमजी महाराज निर्णीत किया, क्योंकि स्वामीजी महाराज से अनेक साधु, ब्रह्मचारी, संन्यासी, महात्मा पण्डित जनों ने अध्ययन किया था। अधिक संख्या में आपकी शिष्य-मण्डली थी इस कारण इस नाम से स्वामीजी की असाधारण ख्याति रही और कई धनिक मान्यपुरुष भी आपके सेवक और परम भक्त रहे।

स्वामीजी महाराज गङ्गा के परम भक्त थे। गङ्गा का वियोग आपको असह्य हुआ, अतः आपने आश्रम का प्रबन्ध अपने एक शिष्य को देकर गङ्गा-तट ही पर रहना निश्चय किया इस कारण हरिद्वार के दक्षिण निकटवर्ती नांगल के उत्तर की वन-भूमि में भूरिया श्रोत व जयन्दीन नामक खोलों के वन में आप निवास करते रहे और दीर्घकाल तक निवास करने के पश्चात् यहीं पतितपावनी जाह्नवी के तीर लगभग ६० वर्ष की अवस्था में आपने इस नश्वर शरीर का परित्याग किया।

स्वामीजी की शिष्यमण्डलो में से मैं भी एक उनका शिष्य हूँ जिसने स्वामीजी महाराज के रचना किये इस स्तोत्र को जिसका स्वामीजी नित्य पाठ किया करते थे, भक्तजनों के हित के लिए प्रकाशित करना उचित समझा।

मैं पं० विश्वंभरदत्तजी शास्त्री संस्कृताध्यापक गवर्नमेन्ट हाईस्कूल नजीबाबाद का विशेष उपकृत हूँ और आपको अनेक धन्यवाद भी प्रदान करता हूँ जिन्होंने अपना समय देकर मेरे इस कार्य में विशेष सहायता दी है।

क्योंकि अन्तिम समय स्वामीजी की दृष्टि कुछ मन्द हो गई थी, इस कारण लेखक शिष्यों की असावधानी से टीका

में अनेक त्रुटियाँ होगई थीं, शास्त्रीजी महाराज ने उनका संशोधन तथा इस पुस्तक की भाषा-टीका किया और भूमिका लिख कर इस पुस्तक का महत्त्व तथा रचयिता का परिचय आप लोगों के समक्ष उपस्थित किया है, यदि जनता इसका स्वागत तथा इसको आदर की दृष्टि प्रदान करेगी तो मैं अपने प्रयत्न को सफल मानूँगा। ॐ शान्तिः।

नांगल
ज़ि० बिजनौर

भक्तजन साधु-महात्माओं का विनीत
नृसिंहस्वरूप ब्रह्मचारी

"द्वितीय भूमिका"

(विशेष वक्तव्य)

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

भगवद्गीता

गीता में कृष्ण भगवान् का वचन है कि धर्म की स्थापना के लिए मैं युग युग में उत्पन्न होता हूँ।

पाठक महानुभाव! इस आर्यावर्त देश पवित्र भारत-भूमि में जहाँ भगवान् कृष्णचन्द्र ने समय समय पर अवतरित होकर असुरों का संहार और साधुजनों का परित्राण किया है इस गिरे समय में भी महापुरुषों की कमी नहीं, कहीं कहीं ऐसे साधुजन अब भी जन्म धारण कर इस पतित देश को पावन करते हुए भारत-माता का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं, इस प्रणाली के महात्मा भी ऐसे ही शरीर हुए जिनके विषय में विशेष रूप से कहना मानों इन महापुरुषों का उपहास करना है।

क्योंकि मैंने भी पूज्यपाद श्री० १०८ स्वामीजी महाराज अच्युताश्रमजी की सेवा में रहकर कुछ उपनिषदादि वेदान्त-ग्रन्थों का अध्ययन किया था अतः ये ब्रह्मचारी नृसिंह-स्वरूपजी मेरे सखा अथवा गुरु-भ्राता हैं, मुझे ऐसा कहने में अत्युक्ति नहीं।

ब्रह्मचारी नृसिंहस्वरूपः—बड़े कर्मनिष्ठ योगयुक्त आत्मा हैं, वर्तमान साधुसंप्रदाय में आपका शरीर भी प्रशंसनीय है। ब्रह्मचारीजी के विषय में विशेष प्रशंसा के वाक्य कहना मेरे

लिए अनुचित है। मैं स्वामीजी महाराज की कृपा तथा ब्रह्मचारी के सौहार्द का ऋणी था इस कारण ब्रह्मचारीजी ने मुझसे इस पुस्तक के प्रकाशित करने का अनुरोध किया किन्तु धनाभाव के कारण हम लोग इस कार्य में फलीभूत न हो सके।

सहृदय पाठक! यह देश भारतवर्ष की उत्तर सीमा, हिमालय की उपत्यका है, जहाँ पूर्व-काल में अनेक ऋषि-मुनियों ने निवास किया था, कण्व का आश्रम, शकुन्तला का जन्म, राजा दुष्यन्त का आखेट के लिए आना, मालवी नदी का तीर इत्यादि स्थानों की प्रसिद्धि यहाँ है, इन्हीं स्थानों के समीप साहनपुर नामक एक राजधानी है जो पूर्व काल में स्वर्णपुर के नाम से प्रसिद्ध रहा है, तथा जो हरिद्वार से लगभग २० मील दक्षिण-पूर्व की ओर व्यवस्थित है, जिसके समीप से होकर हरिद्वार का पैदल मार्ग जा रहा है, इस मार्ग से जानेवाले यात्री साधु-महात्मा जन जिससे परिचित हैं।

पाठक ध्यान दें यह वही स्वर्णपुर है जहाँ आखेट के निमित्त आये हुए राजा चन्द्रापीड़ ने किन्नरद्वन्द्व का अनुसरण करते हुए वन में विस्मित होकर जिस स्वर्णपुर की उत्प्रेक्षा की थी, कादम्बरी के पाठक इस विषय को भली-भाँति जानते हैं।

इसी राजधानी के नरपति क्षत्रिय-कुल-भूषण राजकुमार कुँवर चरतसिंहजी से जाकर ब्रह्मचारीजी ने अनुनय-विनय किया और श्रीमान् कुँवर साहब ने ब्रह्मचारी की प्रार्थना स्वीकार की तथा इस पुस्तक को अपने निज व्यय से छपाने का वचन दिया।

कुँवर साहब बड़े उदार-चेता, धर्मनिष्ठ, प्रजापालक व्यक्ति हैं। आपकी विशेष प्रशंसा करना विस्तार है। इस धर्म-कार्य

के लिए हम आपको अनेकानेक धन्यवाद देते हैं, और इस पुस्तक को आपके करकमलों में समर्पण कर उस मंगलमय जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह भगवान् आपका सब प्रकार से अभ्युदय करें। ॐ शान्तिः!

विनीत

विश्वम्भरदत्त शास्त्री

श्रीगणेशाय नमः

नमोऽन्तर्यामिने, नमो गुरुभ्यः ॥

गङ्गास्तोत्र

यद् ब्रह्म शुद्धमखिलं प्रसवं पुरस्ता-
दासीदनन्तमवबोधसुखाद्वितीयम् ।
ब्रह्मादयो यदनिशं हृदि चिन्तयन्ति
भागीरथीतनुधरं वयमाश्रयामः ॥१॥

उत्पद्यन्ते यतः सर्वे, यः सर्वांस्त्रायते सदा ।
यस्मिंश्चैव लयं यान्ति, तस्मै सर्वात्मने नमः १ ॥

यद्ब्रह्मेतिः—यच्छुद्धं मायया तत्कार्येण च रहितमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः—शुद्धमपापविद्धमित्यादि ॥ पुरस्तात् सृष्टेः प्रागनन्तं देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यमित्यर्थः । तथा चः—सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि श्रुतिवचनम् ॥ अव-बोधनमवबोधः स एव सुखं तदेवाद्वितीयमवबोधसुखा-द्वितीयम् ॥ तथा च विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥ तदेव सोम्य इद-मग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥ इत्यादि श्रुतयः ॥—सांप्रतम् अखिलस्य संपूर्णस्य जगतः प्रसव उत्पत्तिर्यस्मादखिल-प्रसवं ब्रह्म आदिर्येषां ते ब्रह्मादयः ब्रह्मविष्णुशिवप्रभृतयः अनिशं सततम् ॥ सतता नीरता श्रान्त सन्तता विरतानिशम् इत्यमरः ॥ यद् हृदि हृदयाकाशे—पद्मो मासित्यादिना हृदयस्य हृदादेशः ॥ चिन्तयन्ति ध्यायन्ति वयं तद्धरतीतिधरं भागी-रथ्यास्तनुधरमाश्रयामो भजामः ॥ इत्यारभ्य षोडशश्लोक-पर्यन्तं वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ एका वसन्ततिलका तभजा

जगौग इति केदारलक्षणात् ॥ केचिद्विद्वांसो हृदि हृदयाकाशे निराकृतिमाकारशून्यम् ॥ आकारो देह आकृतिः ॥ इति वैजयन्ती ॥ न जायते इत्यजः जन्मरहितः, अन्येभ्योऽपि दृश्यते इति ड प्रत्ययः ॥ तथा च—अजो नित्यः ॥१॥

भावार्थ—जो ब्रह्म सृष्टिप्रपञ्च से पूर्व शुद्धस्वरूप अद्वितीय सुख तथा ज्ञानस्वरूप था, तथा जिसको ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि अहर्निश हृदय में ध्यान करते हैं उस भागीरथी का शरीर धारण किये हुए ब्रह्म का हम भक्तजन आश्रय लेते हैं अर्थात् निज शारीरिक तथा मानसिक वा आध्यात्मिक समस्त सम्पत्तियों को उनके चरण-कमल में समर्पण करते हैं ॥१॥

केचिन्निराकृतिमजं हृदि संस्मरन्ति
केचिद्भजन्ति नररूपधरं परेशम् ।
संसारदुःखदववह्निप्रतप्तदेहाः
सच्चित्सुखात्मकमिदं सलिलं भजामः ॥२॥

शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे, इतिश्रुतिः ॥ संस्मरन्ति उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ केचित्ते-भ्योऽन्ये विपश्चितः ॥ धरतीतिधरं नरस्य रूपं नररूपं तस्य धरं नररूपधरं परेशं परमेश्वरं भजन्ति सेवन्ते, संसार-जनितं यद्दुःखं तदेव दावानलः वनवह्निस्तेन तप्ताः संताप-भवाप्ता देहाः शरीराणि येषां ते संसारदुःखदववह्निप्रतप्त-देहाः वयं कालत्रयेऽपि । अस्तीति सत् चेतनं चित् चैतन्य-मित्यर्थः, सुखमानन्दस्वरूपम्, सदेवचित् सच्चित् तदेव सुखं सच्चित् सुखं तदेवात्मस्वरूपं यस्य तत् सच्चित् सुखात्मकं इदं प्रत्यक्षप्रमाणविषयं जाह्नवीरूपेण प्रतीयमानं सलिलं जलम् सलिलं कमलं जलम् इत्यमरः ॥ भजामः सेवामहे ॥२॥

भावार्थ—कोई विद्वान् अजन्मा निराकार स्वरूप परब्रह्म का हृदय में ध्यान करते हैं, कोई मनीषी जन्मधारी अवतार धारण किये हुए नररूप का चिन्तन करते हैं, संसार के दुःखरूप दावानल से संतप्त देहवाले हम तो इस भागीरथीसलिल सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म का भजन करते अर्थात् सेवन करते हैं ॥२॥

यत्सृष्टमेतदखिलं श्रुतदृष्टदेहम्,
योऽनुप्रविष्ट इहचिद् घनसाक्षिभूतः ।
यो वाच्यवाचकमिदं ह्यखिलं बभूव,
तञ्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥३॥

लोके जलस्य जडत्वसिद्धत्वात् कथं सच्चित्सुखात्मकत्व मित्याशङ्क्याह यत्सृष्टमिति" श्रुता आकर्णिता दृष्टा अवलोकिता देहाः शरीराणि यस्य तच्छ्रुतदृष्टदेहम्, एतत् प्रतीयमानमखिलं निश्शेषं यत्सृष्टं येन सृष्टं विरचितं, तथा च श्रुतयः ॥ सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति ॥ स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा ॥ इदं सर्वमसृजत ॥ तस्मा द्वा एतस्माद्वाऽऽकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः; वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नात्पुरुषः, इत्यादि ॥ नन्वेवमपि दोषस्य तादवस्थ्यं स्फुटमेव, सृष्टस्य प्रपञ्चस्य स्रष्टुः सच्चिदानन्दरूपात् ब्रह्मणो भिन्नत्वात् इत्याशङ्क्याह य इति ॥ इह सृष्टे जगति अनुपश्चात् यः प्रविष्टः प्रवेशं प्राप्तः, तथा च श्रुतिः ॥ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥ अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्येत्यादि, ननु जगतो नश्वरत्वात्तत्प्रविष्टस्यापि नश्वरत्वापत्तिरित्याह चिदिति, चेतनं चित् स एव घनः स एव साक्षिभूतश्चिद्घनसाक्षिभूतः सृष्टस्येति शेषः ॥ नहि

साक्षिणि विकारित्वं दृष्टं श्रुतं वा क्वचित्तथा चोक्तम् ॥ नर्ते स्याद्विक्रिया दुःखी, साक्षिता का विकारिणः, धीविक्रिया सहस्राणां साक्ष्यतोऽहमविक्रियः ॥ नन्वेवमपि जडस्य सलिलस्य तदवस्थमेवेत्याशङ्क्य आह य इति ॥ य इदं प्रत्यक्षविषयीभूतमखिलं सम्पूर्णं वाच्यं दृश्यमानमखिलं जगद्, वाचकं तन्नाम भूतं शब्दजातं तयोः समाहारो वाच्यवाचकं, समाहारत्वादेकवद्भावः क्लीवत्वञ्च। हिशब्दः श्रुतिप्रसिद्धिं द्योतयति, तथा च श्रुतयः ॥ सच्चेत्य सच्चाभवत्, निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च, निलयञ्चानिलयञ्च विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्चासत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवदिति ॥ अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति, इत्यादि च ॥ न वाचमपि वाच्यवाचकयोः प्रसिद्धविकारित्वात्तद्भावापन्नस्य ब्रह्मणोविकारित्वमिति शङ्क्यम् ॥ वाच्यवाचकयोः प्रतीतिमात्रविषयत्वात्तथा च श्रुतयः ॥ आत्मैवेदं सर्वं, ब्रह्मैवेदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति, एकधैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चनेति, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ इति ॥ नानात्वदर्शिनो दोषोप्ययुक्तः ॥ बभूव भूतवान् ॥ जह्नोरियं कन्या जाह्नवी तस्यास्तनुस्तस्या धरन्तञ्जाह्नवीतनुधरं सततमविरतं नमामः प्रह्वी भवामः ॥ न चोपक्रमे अत्र क्लीवत्वेनोक्तं संप्रति पुंस्त्वेन व्यपदिष्टमिति पूर्वापरविरोध इत्याशङ्क्याह वाचकशब्देषु मिथो विरोधस्तेषां नानात्वात् वाच्यस्य ब्रह्मण एकत्वात् वाङ्मनोऽविषयत्वाच्च न विरोधः तथा च श्रुतिः ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन ॥ एकधैवानुद्रष्टव्यमिति च। ॥३॥

भाषार्थ—सुना और दृष्टि में आया अर्थात् देखा हुआ जो यह ब्रह्माण्ड भगवान् का स्थूल शरीर है, इस समस्त विश्व की जिसने रचना की

तथा जो चैतन्य आनन्दस्वरूप सबका साक्षी होकर सबमें व्याप्त है जो वस्तु तथा वस्तु के नाम-रूप से व्यवहार होता है उस जाह्नवी शरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥३॥

यो ब्रह्मविष्णुशिवरूपधरो महात्मा
ब्रह्माण्डमेतदखिलं सततं बिभर्ति ।
सर्वं त्विदं यदनुभासति भासमानम्
तञ्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥४॥

ननु स्रष्टस्य प्रमाणविषयत्वात् स्रष्टुः प्रमाणविषयत्वाच्चास्तित्वाभावप्रसङ्गम् इत्याह य इति आप्नोति सर्वत्र तथा सृष्ट्यवसानकाले सर्वमादत्ते च संसारदशायां विषयानत्ति च सृष्ट्याद्यन्त मध्येष्वेकधैव तिष्ठति च यः स आत्मा तथा च स्मृतिः ॥ यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह । यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते ॥ महत्परिमाणवानात्मामहात्मेति कर्मधारयसमासः ॥ धरतीतिधरः, ब्रह्मविष्णुशिवानां रूपाणि ब्रह्मविष्णुशिवरूपाणि तेषां धरः ब्रह्मविष्णुशिवरूपधरः ॥ य एतदखिलं निःशेषं ब्रह्मणोऽण्डं निवासस्थानं ब्रह्माण्डं सततं निरन्तरं बिभर्त्ति धारयति पोषयति च तथा च श्रुतिः, स ब्रह्म स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरा परमः स्वराट् । स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ ननु ब्रह्मविष्णुशिवानामपि सृष्टान्तः पातित्वात्तेषामपि नश्वरत्वापत्तिः स्यादित्याशङ्क्याह सर्वमिति, तु पुनः सर्वमिदं यद्भासमानं प्रकाशमानं अनुपश्चाद् भासते प्रकाशते, तथा च श्रुतिः, तमेव भान्तमनुभाति सर्वं यस्य भासा सर्वमिदं विभाति, इत्यादि, जाह्नवीतनुधरं तं परमात्मानं सततं नमामः ॥४॥

भावार्थ—जो महान् आत्मा भगवान् प्रकृति के सत्त्वगुणस्वरूप ब्रह्मा, सृष्टि के रचनाकर्ता, रजोगुणस्वरूप विष्णु सृष्टि के पालनकर्ता, तमोगुणस्वरूप शिव सृष्टि के संहारकर्ता होकर इन तीनों रूपों से इस समस्त ब्रह्माण्ड का निरन्तर धारण करते हैं, तथा सूर्य चन्द्रादि सृष्टि के प्रकाश करनेवाले जिसके प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं, उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥४॥

यन्नेति नेति वचनैः श्रुतयो गृणन्ति
साव्याकृतं हि यदभूत् परमस्वरूपम् ।
वाचां सहैव मनसा विषयो न याति
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥५॥

ननु स्रष्टुः प्रमाणविषयत्वात्तदवस्थमेवेत्याशङ्क्याह यन्नेति, नेति नेति वचनैः श्रुतयो यद् गृणन्ति प्रत्येकं समग्रस्य चञ्चलत्ववारणेन तदाधारस्यावशिष्टस्य ब्रह्मत्वं बोधयन्तीति भावः, तथा च श्रुतिः अथात आदेशः नेति नेतीत्यादि, अत्राद्य नेति शब्देन पृथिव्यप्तेजसां ब्रह्मत्वं निषिध्यते, द्वितीयनेति शब्देन वाय्वाकाशयोर्ब्रह्मत्वं वारितमथवा वीप्सायां द्विवचनं कृत्वा प्रत्येकं प्रपञ्चस्य ब्रह्मत्वं निषिध्यते श्रुत्या तदवशिष्टस्य तदाधारस्य ब्रह्मत्वं बोधयतीति भावः नन्वेवमपि प्रमाणाविषयत्वं तदवस्थमेवेत्याशङ्क्याह, साव्याकृतमिति, यन्नव्याकृतं विविधाकाररहितं जगत् कारणमव्याकृतं तेन सह वर्तमानं साव्याकृतमभूत् सकारणजगद्रूपेण यः प्रतीतोऽभूदित्यर्थः ॥ तथा च श्रुतिः ॥ तद्धि तर्ह्यव्याकृतमासीत्, इति, हि शब्दः श्रुतिप्रसिद्धिं द्योतयति । कार्यकारणयोर्विकारित्वेन ब्रह्मणोऽपि विकारित्वं प्राप्तमित्या-

शङ्क्याह । परमस्वरूपमिति ॥ परममुत्कृष्टं निर्विकार-स्वरूपं यस्य तत्परमस्वरूपम् । कार्यकारणभावापन्नत्वेऽपि ब्रह्मणो निर्विकारित्वमेवेति भावः । अज्ञानां कार्यकारण-रूपजगत्प्रतीतावपि तज्ज्ञानां सच्चिदानन्दरूपं ब्रह्मैव प्रतीयते, प्रकृतेरन्यथात्वभावाच्च, कार्यकारणरूपत्वं तु माय-यैव प्रत्याययति न तु स्वरूपतो भवति, केनचित्प्रमाणेन तद्बोधोपायो वक्तव्य इत्याशङ्क्याह वाचामिति, मनसा सहैव वाचां विषयो न याति ॥ संकल्पविकल्पात्मिकयान्तः-करणप्रवृत्या सह वाचां विषयो न भवतीत्यर्थः, तथा च श्रुतिः, यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह इत्यादि, जाह्नवी-तनुधरं तं सततं नमामः ॥५॥

भावार्थ—जिस परब्रह्म को श्रुतियाँ नेति नेति कहकर कथन करती हैं, जो परमस्वरूप निज माया की समस्त शक्तियों को लेकर उत्पन्न हुआ है, जो मन और वाणी का विषय नहीं, अर्थात् जिसे मन मनन तथा वाणी कथन नहीं कर सकती उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥५॥

जानन्ति पुण्यनिचया गुरुसेवया य-
च्छुद्धीकृतेन मनसाऽऽत्मतयाऽद्वितीयम् ।
यस्मात्परं किमपि नेति वदन्ति वेदा-
स्तज्जाह्नवीतनुधरं सततं भजामः ॥६॥

ननु ब्रह्मणो वाङ्मनोऽविषयत्वेन तज्ज्ञानानुपपत्तेस्तदनु-पपत्तौ च प्रेक्षावतां तदर्थप्रवृत्यनुपपत्तेस्तद्बोधकानामुपनिषदां वैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्याशङ्क्याह जानन्तीति ॥ पुण्यानि निचिन्वन्ति ये ते पुण्यनिचया (पचाद्यच्प्रत्ययः) गुरूणां सेवा

गुरुसेवा तया गुरुसेवया। अशुद्धं शुद्धं संपद्यमानमकारि येन तेन शुद्धीकृतेन (अभूततद्भावे च्विः) मनसाऽऽत्मतया स्वरूपत्वेनाद्वितीयम् यज्ज्ञानन्ति विदन्ति। ननु प्रमाण-विषयस्य ज्ञानासम्भव इति चेच्छृणु॥ आकाशादिपञ्चमहाभूतानां मायाकार्यत्वं निश्चित्य, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानाञ्चाकाशाद्याधारकत्वेन तद्गुणत्वञ्च निश्चित्यैवं ब्रह्माण्डस्य तदन्तर्वर्तिस्थूलप्रपञ्चजातस्य च पञ्चीकृत पञ्चभूतकार्यत्वं निश्चित्य स्थूलशरीरान्तर्वर्ति सूक्ष्मशरीरस्य तु श्रोत्रचक्षुस्त्वग्रसना-घ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थ प्राणापानसमानोदानव्यानबुद्धि-चित्तमनोऽहङ्कारात्मस्य पञ्चीकृतपञ्चभूतकार्यत्वं निश्चित्य॥ (अथ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्) इति श्रवणात्सच्चिदानन्द-रूपस्य ब्रह्मणोऽत्र प्रवेशं बुद्ध्वा विचिन्वन्ति। अस्मिन् संघाते सच्चिदानन्दस्वरूपं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं असज्जडदुःखस्वरूपं मायाकार्यम्। संघाते मायाकार्यस्य ब्रह्मस्वरूपस्य च विवेकं निश्चये सति किमत्र ब्रह्मस्वरूपमिति विचारयन्ति, शृणोमि, पश्यामि, जिघ्रामि, वदामि, करोमीत्यादि प्रत्यया ब्रह्मस्वरूपे भवन्ति। ननु मायाकार्यं तस्यासज्जडदुःखस्वरूपत्वात्तच्च ब्रह्माहज्ञानामि पश्यामि शृणोमीत्यादिप्रत्ययाः स्वस्मिन्नेव भवन्ति। एकस्यैव स्वस्य पश्यामीत्यादि क्रियोपाधिवशात् द्रष्टृत्व-श्रोतृत्वघ्रातृत्वादि प्रतीतिर्भवति एवंस्वरूपत्वेन ब्रह्म जानन्ति ते, तथा च श्रुतिः—कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा पश्यति, येन वा शृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति, येन वा वाचं व्याकरोति, येन वा स्वादु चास्वादु विजानाति, इत्यादि श्रुतिभिः सङ्घाते विज्ञानस्य व्यापकत्वं स्वस्यैव विज्ञानस्वरूपं निश्चित्यानन्दस्वरूपञ्च विचिन्वन्ति॥ तथा च श्रुतिः, को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्॥ एष ह्येवानन्दयति, एतस्य वाऽऽनन्दस्य

मात्रामुपजीवन्तीत्यादि श्रुतिभिः स्वस्यानन्दरूपत्वञ्च निश्चिन्वन्ति, प्रेमातिशयास्पदत्वाच्च विज्ञानानन्दत्वस्य नित्यत्वेन सच्चिदानन्दरूपत्वञ्च स्वस्यैव निश्चिन्वन्ति, प्रज्ञानं ब्रह्मेति महावाक्ये नाप्यस्मिन् सङ्घाते विद्यमानस्य ब्रह्म प्रज्ञानस्य स्वस्वरूपत्वं निश्चिन्वन्ति, तथाऽहं ब्रह्मास्मीत्यस्मिन् वाक्ये अहं प्रत्ययशब्दयोराधारभूतो विज्ञानात्मा ब्रह्म सोऽहमस्मच्छब्दवाच्य इति निश्चिन्वन्ति, एवं सामवेदीयेऽपि वाक्ये तत्त्वमसीति तच्छब्दवाच्यो मायोपाधिः सर्वयोनिः, सच्चिदानन्दस्वरूपो य ईश्वरः स तच्छब्दवाच्यार्थः, लक्ष्यार्थस्तु शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप एव॥ एवं शरीरस्य विशिष्टः सच्चिदानन्दस्वरूपस्त्वं पदवाच्यार्थः, शरीरत्रयविवेकेन समाधिदशासम्पन्नः शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपस्त्वं पदलक्ष्यार्थः, एवं लक्ष्ययोरैकात्म्यं पदत्रयेण श्रुतिरुपदिशति॥ एवमाथ--र्वणीयेऽपि महावाक्ये निश्चिन्वन्ति॥ अयमात्मा ब्रह्मेति॥ अस्मिन सङ्घाते अपरोक्षतया प्रतीयमानो विज्ञानात्मा ब्रह्मेति श्रुत्यर्थः॥ शरीरत्रयञ्च स्वस्माद्भिन्नं जानाति मदीयत्वेन ज्ञेयत्वेन च प्रतीयमानत्वात् तथा च प्रयोगः॥ शरीरं स्वस्माद्भिन्नं मदीयत्वेन ज्ञेयत्वेन च प्रतीयमानत्वात् यद्यन्मदीयं तत्तत्स्वस्माद्भिन्नं मदीयत्वात् कनककुण्डलादिवत्, यद्यद्ज्ञेयं तत्तद् ज्ञातुर्भिन्नं ज्ञेयत्वाद् घटादिवत्॥ एवं निश्चिन्वाना आत्मतया यद्ब्रह्म तद्विदन्ति॥ ननु यथा जगदाधारं ब्रह्म तथा ब्रह्मणोऽपि कोप्याधारो वक्तव्य इत्याशङ्क्याह, यस्मादिति॥ यस्माद्ब्रह्मणः परं किमपि नास्ति॥ वेदयन्त्यविदितानर्थानिति वेदाः—वदन्त्युपदिशन्ति, तथा च श्रुतिः॥ इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः। इति,

जाह्नवीतनुधरं तं सततं नमामः॥ नमाम इत्यत्र बहुवचनन्तु शिष्याभिप्रायेणावगन्तव्यम्॥

भावार्थ—जिस अद्वितीय ब्रह्म को अधिक पुण्यात्मा भक्तजन गुरुजनों की सेवा द्वारा शुद्ध अन्तःकरण से आत्मसाक्षात्कार करके जानते हैं, जिसको वेद परात्पर अर्थात् पर से पर कथन करते हैं उस जाह्नवी-शरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर भजन करते हैं॥६॥

अज्ञानमेतदखिलं प्रतिभाति विश्वम्
यस्यैव यत्र न यतोऽन्यदजाद्वितीयात्।
सत्यानृतादवगते न विभाति यस्मिँ-
स्तञ्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः॥७॥

ननु ब्रह्मणः परं तदन्यं दृश्यमानप्रपञ्चमस्तिप्रतीयमानत्वादित्याशङ्क्याह, अज्ञानमिति॥ एतदखिलं निःशेषं प्रतीयमानं विश्वं जगत् प्रतिभाति तदज्ञानम्॥ यस्यैव यत्र—अर्थात् यस्यैव ब्रह्मणः यत्र यस्मिन् कर्मण्ये तज्जगदुद्भवति॥ ननु तथापि जगतोऽन्यत्वमस्तीत्याशङ्क्याह॥ यतो यस्मादजाद्वितीयात् सत्यानृताद्ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्नास्ति॥ यस्मिन् सच्चिदानन्दस्वरूपे ब्रह्मण्यवगते ज्ञाते सति जगन्न विभाति न प्रतीयते तं जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः प्रह्वीभवाम इत्यर्थः॥७॥

भावार्थ—जो यह समस्त विश्वप्रपञ्च प्रतीत हो रहा है, यह समस्त जीव का अज्ञान है, उस अजन्मा अद्वितीय से अन्य वस्तु कुछ है ही नहीं, क्योंकि जिस सत्यस्वरूप अविनाशी के ज्ञान होने पर इस प्रपञ्च में अन्य वस्तु कुछ भासमान नहीं होती, उस गङ्गाशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं॥७॥

रज्जौ भुजङ्गम इव प्रतिभाति यत्र
विश्वं प्रपञ्चमिति नास्ति यतोऽन्यदीषत् ।
सर्वं तदेव खलु यच्छ्रुतयो वदन्ति
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥८॥

यस्मिन् ब्रह्मण्यन्धकारप्रक्षिप्तायां रज्जौ भुजङ्गम इव सर्पे इव विश्वं अखिलं प्रपञ्चं प्रतिभाति भासते, इत्यतो यतो यस्माद्ब्रह्मण ईषत्किञ्चिदप्यन्यन्नास्ति, अस्मिन्नर्थे श्रुतयः प्रतिपादयन्ति सर्वमिति ॥ सर्वं निश्शेषं प्रतीयमानं खलु प्रसिद्धं यत्प्रपञ्चजातं तदेवं ब्रह्मैवेत्यर्थः ॥ इति । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादि श्रुतयो वदन्ति प्रतिपादयन्ति, जाह्नवी-तनुधरं तं सततं निरन्तरं नमामः प्रणमाम इत्यर्थः ॥ ननु सर्वस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मरूपत्वे, प्रपञ्चस्योत्पत्तिविनाशत्वेन ब्रह्मणोऽप्युत्पत्तिविनाशत्वापत्तिः स्यात्तथा चाजो नित्यः शाश्वत इत्यादि श्रुतयो व्याकुप्येरन्नित्याशङ्क्याह 'यस्यान्त-रेव, इति ॥८॥

भावार्थ—जिस परब्रह्म ईश्वर में यह समस्त विश्वप्रपञ्च रज्जू में सर्प के समान प्रतीत हो रहा है, और जिससे अन्य कुछ भी सत्ता नहीं, यह समस्त विश्व वही ब्रह्म है ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥८॥

यस्यान्तरेव प्रतिभाति प्रपञ्चमेतत्
सर्वं च यो गगनवत् समवस्थितोऽपि ।

तज्जौ न यं स्पृशत एव ह्यधर्मधर्मौ
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥९॥

एतन्निश्शेषं दृश्यमानं प्रपञ्चं यस्य ब्रह्मणोऽन्तरेव मध्य एव प्रतिभाति प्रतीयते । ऐन्द्रजालिकपदार्थवत् प्रतीतिरेव प्रपञ्चस्य न तु वस्तुतो विद्यमानतेति भावः ॥ यः सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा सर्वत्र प्रपञ्चेषु गगनवदाकाशवत्समवस्थितोऽपि तज्जौ तस्मात्प्रपञ्चाज्जातौ, न धर्म अधर्म, अधर्मश्च धर्मश्च धर्माधर्मौ ॥ चोदना लक्षणोऽर्थो धर्म इति जैमिनीयसूत्रम् ॥ चोदनाविधिः स एव लक्षणं ज्ञापकं यस्य स चोदनालक्षणः, एवं भूतो योऽर्थः स धर्मः, तद्व्यतिरिक्तोऽधर्मः, यमात्मानं न स्पृशतः ॥ तथा च श्रुतिः, सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यैरित्यादि श्रुतयः ॥ जाह्नवीतनुधरं तं सततं नमामः ॥९॥

भावार्थ—जिस परब्रह्म में यह समस्त प्रपञ्च प्रतीत हो रहा है, और जो आकाश के समान समस्त सृष्टि में व्याप्त है, और जिससे उत्पन्न हुए धर्म तथा अधर्म जिसको स्पर्श नहीं करते उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥९॥

यच्चान्यदेव विदिताविदिताद्वदन्ति
श्रोत्रादिप्राणमनसामपि तत्तदेव ।
विज्ञाय यच्च सुधियो नहि संसरन्ति
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥१०॥

आत्मबोधोपायं श्रुत्याभिनयति यदिति ॥ विदितञ्चाविदितञ्च तयोः समाहारो विदिताविदितं तस्माद्विदिताविदिता-

त्समाहारत्वादेकवद्भावः क्लीवत्वञ्च ॥ ज्ञाता ज्ञाताद्यद् ब्रह्म अन्यदेव वदन्त्युपदिशन्ति वेदा इति शेषः। तथा च श्रुतिः ॥ न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ॥ श्रोत्रादिप्राणमनसामपि तत्तदेव श्रोत्रादीनां श्रोत्रादिः प्राणस्य प्राणः मनसो मनः तथा च श्रुतिः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच ꣳस उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य-धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ सुधियो विद्वांसः (विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः सत्सुधीः कोविदो बुधः) इत्यमरः ॥ यच्च ब्रह्मविज्ञाय बुद्ध्वाहीति निश्चयेन न संसरन्ति न पुनः संसारावर्ते निमज्जन्तीत्यर्थः तथा च श्रुतयः ॥ ज्ञात्वादेवं सर्वपाशा-पहानिः, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन, तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेतीत्यादयः ॥ जाह्नवीतनुधरं तं सततं नमामः ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म को श्रुति, ज्ञात अर्थात् ज्ञान का विषय अज्ञात अर्थात् अज्ञान का विषय यानी दृष्टश्रुत पदार्थ से अन्य कहकर कथन करती है, और जो श्रोत्र आदि इन्द्रियों का भोक्ता, प्राणों का प्राण और मन का मन है और जिसका ज्ञान होने पर ज्ञानी फिर संसार में नहीं आते अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं उस जाह्नवीशरीर-धारी परब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं ॥१०॥

सर्वं यदेकमवभासयते सुखात्मा
सूर्यादिभासकतया न प्रकाश्यते तैः ।
आर्तं यतोऽन्यदिति वेदशिरोऽभिवक्ति
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥ ११ ॥

उक्तमेवार्थं स्फुटयति, सर्वमिति ॥ एकं यद् ब्रह्मवभासयते प्रकाशयति तथा च श्रुतिः ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ सूर्यादिभासकतया सूर्यचन्द्रादीनां प्रकाशकत्वेन तैः सूर्यचन्द्रादिभिः सुखात्मा सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा न प्रकाश्यते नावभासयते ॥ तर्हि भास्यभासकत्वेन द्वैतापत्तिः स्यादित्याशङ्क्याह, आर्तमिति, यतो यस्माद्ब्रह्मणोऽन्यदार्तम् अर्त्यायुक्तं विनश्वरमिति भावः, अनृतमिति यावत्, इति वेदशिर उपनिषदभिवक्ति प्रतिपादयतीत्यर्थः ॥

संप्रति ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं निरूपयति, यस्मादिति ॥११॥

भावार्थ—जो सुख-स्वरूप परमात्मा एक रूप होकर अर्थात् एक शक्ति से समस्त विश्व को प्रकाशित कर रहा है, और जिसको सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशक पदार्थ प्रकाशित नहीं करते, और वेद जिससे अन्य समस्त पदार्थ नाशवान् कथन करते हैं, उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥

यस्माद्धि जायत इदं ह्यखिलं प्रपञ्चम्
येनैव जीवति यतोऽनुविलीयते वै ।
सच्चित्सुखात्मकतराजविनाशहीने
तज्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥१२॥

यस्माद्धि ब्रह्मण एव हि शब्दः एवार्थः ॥ इदं दृश्यमानमखिलं निःशेषं प्रपञ्चं जायते प्रादुर्भवति, येनैव ब्रह्मणा एव जीवति प्राणिति । यतो यस्मिन्, सच्चित्सुखात्मकतरश्चासावजः सच्चित् सुखात्मकतराजः स चासौ विनाशहीनः सच्चित् सुखात्मकतराजविनाशहीनस्तस्मिन् सच्चित् सुखात्मकत-

राजविनाशहीने ब्रह्मण्यनुपश्चाद्विलीयते वै विलयं वा गच्छति खलु, तथा च श्रुतयः ॥ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रत्यभिसंविशन्ति ॥ आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्ति ॥ इत्यादयः ॥ अवधारणेन सांख्याभिमतात्सृष्टिर्वास्यति ॥ तथा च ब्रह्मसूत्रम् ॥ ईक्षतेर्ना-शब्दम् ॥ जगत्कारणस्येक्षितत्वादशब्दं शब्दरहितं वेदेन प्रतिपादितं प्रधानं जगत्कारणं वेति सूत्रार्थः ॥ जाह्नवीतनुधरं तं सततं नमामः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जिस परब्रह्म से यह सकल विश्वप्रपञ्च उत्पन्न होता है, और जिससे जीवन धारण कर, सच्चिदानन्द सुख-स्वरूप अजन्मा अविनाशी जिसमें विलीन हो जाता है उस जाह्नवीशरीरधारी परब्रह्म को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥१२॥

ज्ञानान्न यस्य परमस्त्युभयत्र ज्ञानम्
ज्ञेयाद्यतो न परमस्त्युभयत्र ज्ञेयम् ।
लाभाच्च यस्य न परोऽस्त्युभयत्र लाभ-
स्तञ्जाह्नवीतनुधरं सततं नमामः ॥१३॥

तज्ज्ञानस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वं प्रतिपादयति, ज्ञानादिति, यस्य ब्रह्मणो ज्ञानात् परममुभयत्रास्मिँल्लोके परलोके च ज्ञानं नास्ति, यतो यस्माज्ज्ञेयाद्वेदितव्यात्परमुभयत्रास्मिँल्लोके परलोके च ज्ञेयं वेदितव्यं नास्ति । यस्य ब्रह्मणो लाभाच्च परमुभयत्रा-स्मिँल्लोके परलोके च लाभो नास्ति जाह्नवीतनुधरं तं सततं नमामः ॥१३॥

भाषार्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से श्रेष्ठ इस लोक और परलोक में कोई ज्ञान नहीं, तथा दोनों लोकों में जिस जानने

योग्य भगवान् से उत्तम कुछ जानने योग्य नहीं, जिसके लाभ से अधिक उभयलोक में कोई लाभ नहीं, उस जाह्नवी शरीरधारी परब्रह्म को हम नित्य नमस्कार करते हैं ॥१३॥

गंगे त्वमेव जननी जनकस्सखा मे
बन्धुः सुहृद् गुरुरनन्तसुखप्रदाता ।
सर्वं त्वमेव मम जाह्नवि मच्छरीरम्
त्वद्रक्षितं भवतु मां न जहीहि मातः ॥१४॥

संप्रति जाह्नवीं स्वाभीष्टं प्रार्थयन्नुपसंहरति ॥ गंगे इति ॥ गंगे हे भागीरथि त्वमेव मे मम जननी माता त्वमेव मे जनकः पिता ॥ तातस्तु जनकः पिता इत्यमरः ॥ त्वमेव मे सखा मित्रं मे मम बन्धुस्त्वमेव, त्वमेव मे सुहृद् प्रत्युपकारमनपेक्ष्योपकरोतीति सुहृद् ममानन्तमपरिमितञ्च तत्सुखमनन्तसुखं तस्य प्रदाता अनन्तसुखप्रदाता गुरुस्त्वमेव ॥ मच्छरीरं मम वपुः त्वद्रक्षितं त्वत्पालितं भवतु (प्रार्थनायां लोट्) मातर्जननि मां न जहीहि न त्यज ॥१४॥

भाषार्थ—हे गङ्गे तुम्हीं मेरी माता तथा तुम्हीं मेरे पिता और तुमही मेरे मित्र और तुमही बन्धु, सुहृद्, गुरु तथा अनन्त सुखों के देनेवाली हो, किन्तु मेरे सर्वस्व तुम ही हो इस कारण हे जाह्नवि माता मेरा शरीर आपकी कृपा-दृष्टि से रक्षित हो तथा हे मातः मुझ दीन को अपने चरण-कमल से कदापि पृथक् न करो ॥१४॥

त्वत्पादपद्मयुगलं विधिशङ्कराद्यै-
र्मूर्ध्ना निषेवितमहं सततं भजामि ।

यावद्धि प्राणसहितं मम तिष्ठतीदम्
गंगेति नाम ललितं मनसा गृणामि ॥१५॥

त्वत्पाद इति ॥ विधिश्च शंकरश्च विधिशंकरौ तावाद्यौ येषां तैर्विधिशंकराद्यैर्ब्रह्मशिवनारायणादिभिर्मूर्ध्ना मस्तकेन निषेवितं त्वत्पादपद्मयुगलं त्वच्चरणारविन्दयुगलं अहं सततमविरतं भजामि ॥ यावद्धि यावत्कालपर्यन्तं खलु प्राणसहितमसुभिर्युक्तं ममेदं प्रतीयमानं पाञ्चभौतिकं शरीरं तिष्ठति स्थितिमवाप्नोति तावल्ललितं मञ्जुलं गंगेति प्रसिद्धं नाम मनसा गृणामि मनसा संस्मृत्य वाचा गृणामि वदामीत्यर्थः ॥१५॥

भावार्थ—हे भगवति जिन तेरे चरण-कमल की ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि मस्तक से सेवा करते हैं, उनका मैं निरन्तर भजन करता हूँ। हे जननि जब तक मेरा शरीर प्राणयुक्त है तब तक मैं गङ्गा यह मनोहर नाम मन-युक्त वाणी से उच्चारण करूँ ॥१५॥

इत्येव मेऽभिलषितं कुरु ब्रह्मदात्रि
त्वत्तः पृथङ् न मम यातु मनःप्रवृत्तिः ।
पुत्रं कुवृत्तमपि नैव जहाति माता
सद्बुद्धिमन्तरि ददाति सदा प्रपाति ॥१६॥

इतीति, ब्रह्मदात्रि ब्रह्मज्ञानप्रदायिके ब्रह्मज्ञानस्य मोक्षफलकत्वान्मोक्षदात्रीति भावः ॥ गङ्गे मम मनः प्रवृत्तिस्त्वत्तः पृथङ् न यातु न गच्छतु, इत्येव मे मनोऽभिलषितं सम्पादय (प्रार्थनायां लोट्)—यत इत्यध्याहार्यम् ॥ माता जननी, कुत्सितं निन्दितं वृत्तमाचरणं यस्यासौ कुवृत्तस्तङ्कुवृत्तमपि दुराचारिणमपि पुत्रं सुतं (सुतः पुत्र इत्यमरः) न जहाति न त्यजति, तर्हि किं करोतीत्याशङ्क्याह अन्तरि

अन्तःकरणे मनसीति यावत् । अन्तरीति अव्ययस्य शब्द-प्रयोगो लाक्षणिकः, सद्बुद्धिं पवित्रां मतिं ददाति वितरति, तथा च सदा सर्वस्मिन् काले प्रपाति रक्षतीत्यर्थः ॥१६॥

भाषार्थ—हे ब्रह्मज्ञान के देनेवाली माता, मेरा यह मनोरथ पूर्ण करो कि मेरे अन्तःकरण की प्रवृत्ति आपके चरण-कमल से पृथक् न हो, क्योंकि माता दुराचारी पुत्र को भी नहीं त्यागती अपितु उसके अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि देती और सदैव उसकी रक्षा करती है ॥१६॥

गङ्गास्तोत्रमिदं पुण्यम्
श्रीगङ्गापादपद्मयोः ।
समर्पितं मनोऽभीष्टम्
लभन्तां पाठकाः सदा ॥१७॥

गङ्गास्तोत्रमिति ॥ इदं पुण्यं पवित्रं स्तौतीत्यनेन स्तोत्रं दाम्नीससित्यादिना करणे ष्ट्रन्प्रत्ययः, गङ्गायाः स्तोत्रं गङ्गास्तोत्रं षष्ठीतत्पुरुषः । श्रीगङ्गापादपद्मयोः श्रीभागीरथी-चरणकमलयोः समर्पितम् ॥ पाठकाः सदा सर्वदा मनोऽभीष्टं मनोवाञ्छितं फलमिति शेषः; लभन्तां प्राप्नुवन्तु ॥ अनुष्टु-ब्वृत्तम् ॥

भाषार्थ—हे गङ्गे हे मातः यह पवित्र आपका स्तोत्र मैं आपके चरण-कमल में समर्पण कर यह प्रार्थना करता हूँ कि इसके पाठक भक्तजन इसका निरन्तर पाठ करते हुए अपने मनोऽभीष्ट मोक्षफल को प्राप्त करें ।॥ १७ ॥

जेहि विरचि मम गुरु पुरा करुणा करि मोहि दीन्ह ।
मातु कृपातें यत्न करि सर्व प्रकाशित कीन्ह ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमत्पुरुषोत्तमाश्रमशिष्य श्रीमदच्युताश्रमस्वामिविरचितमर्थदीपिकासहितं गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

नमोऽन्तर्यामिने

महानुभाव !

इस नारायणस्तोत्र के रचयिता भी वही पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी अच्युताश्रमजी महाराज हैं, किन्तु यह स्तोत्र स्वामीजी की मूल-मात्र रचना ही थी, इसका संशोधन तथा इस पर संस्कृत और हिन्दी भाषा दोनों टीकायें शास्त्रीजी महाराज की रचना हैं।

शास्त्रीजी महाराज राजधानी साहनपुर (स्वर्णपुर) के भी प्रधान पण्डित हैं।

ब्रह्मचारी

नृसिंहस्वरूप

अथ नारायणस्तोत्र

यः शुद्धोऽद्वयचिद्घनः सुखमयोऽद्वैतात्पुराभूदजः
एको हि प्रथितः श्रुतिस्मृतिपुराणादौ खवद् योऽव्ययः ।
यस्मिन्नद्य चराचरात्मकमिदं सत्यात्मवद्भासते
यः साक्षी सकलस्य निष्क्रियवपुर्नारायणः पातु माम् ॥१॥

यस्मादिदं प्रजायेत यश्चेदं त्रायते सदा ।
यस्मिंश्चैव लयं याति, तस्मै विश्वसृजे नमः ॥

यः शुद्धः शुद्धस्वरूपः अद्वयोऽद्वैतभावशून्यश्चिद्घन-श्चिदानन्दः सुखमयः सुखस्वरूपोऽजः जन्ममृत्युरहितः पुरा पूर्वस्मिन् कालेऽद्वैताद् द्वैतभावरहितादभूत्, योऽव्ययोऽविनाशी एकः कूटस्थः श्रुतिस्मृतिपुराणादौ खवदाकाशवत् प्रथितः विस्तृतः, यस्मिन्नारायणे इदं चराचरात्मकं जड़-चैतन्यात्मकं प्रपञ्चं सत्यात्मवत् सत्यस्वरूपवद्भासते प्रकाशं भवति, यो निष्क्रियवपुः क्रियया चेष्टया रहितं वपुः शरीरं यस्यैवंभूतः सकलस्य समस्तप्रपञ्चभूतस्य साक्षी द्रष्टा स नारायणः मां पातु रक्षतु इत्यर्थः ॥१॥

भाषार्थ——जो शुद्धस्वरूप द्वैतभावशून्य चिदानन्द सुखस्वरूप अजन्मा पूर्वकाल में, अद्वैत शक्ति से प्रादुर्भूत हुआ, जो अविनाशी एकरूप होकर आकाश के समान समस्त विश्व में व्याप्त श्रुतिस्मृति पुराणादि शास्त्रों में वर्णित है, जिसमें यह समस्त जड़ चैतन्य जगत् सत्य के समान भासमान हो रहा है जो क्रियाशून्य समस्त विश्व का साक्षी है वह नारायण हमारी रक्षा करें ।

येनेदं हि प्रतीयते गुणमयं दृश्यं ससूर्यात्मकम्
प्राणः प्राणसतो मनश्च मनसो बुद्धिश्च बुद्धेः परः ।
खं खानामपि जन्मनाशरहितो यस्त्वेकधा भासते
योऽस्पृश्यो हि प्रमाणकैर्निगदितो नारायणः पातु माम् ॥२॥

येन नारायणेन इदं ससूर्यात्मकं सूर्यचन्द्रादियुक्तं गुणमयं सगुणं दृश्यप्रपञ्चं प्रतीयते प्रतीतं भवति, यश्च प्राणस्य प्राणो मनसश्च मनो बुद्धेर्ज्ञानस्य बुद्धिर्ज्ञानं यश्च परात्परः, जन्मनाशरहितो य आकाशादीनामपि शून्यभूतः सन्, एकधा एकेनैव प्रकारेण भासमान भवति, यः प्रत्यक्षादिप्रमाणैरस्पृश्योऽगोचरो निगदितः, वेदादिभिरिति शेषः स नारायणः मां पातु ॥२॥

भावार्थ—जिस नारायण से यह सूर्यचन्द्रादि सगुण दृश्य प्रपञ्च प्रतीत हो रहा है, जो प्राणों का प्राण, मन का मन, बुद्धि का बुद्धि, और पर से पर है, जो जन्म-मृत्यु-रहित आकाशादिकों का भी उत्पादक, एक रूप से भासित हो रहा है, तथा जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अगोचर है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

यः साक्षाद्धि प्रकाशते नहि परे यद्वेदने वाञ्छितो
यस्य ज्ञानत एव सर्वजगतो नान्यं परं नास्ति वै ।
बुद्धोऽनादिनिरञ्जनो हि बहुधा विश्वात्मना भाति मे
शुद्धोऽनन्त इति श्रुतिप्रकथितो नारायणः पातु माम् ॥३॥

यः साक्षात् हि, स्वयमेव प्रकाशते, यः परे वेदने परज्ञाने नहि वाञ्छितः, यश्च परज्ञानं प्रपञ्चज्ञानं नापेक्षते, अपेक्षां नहि करोति, यस्य ज्ञानात् सर्वजगतोऽखिलप्रपञ्चस्य ज्ञानं परं

श्रेष्ठं नास्ति, यश्च बुद्धो बोधस्वरूपः, अनादिर्जन्मरहितो निरञ्जनो दुःखादिरहितः, बहुधा अनन्तरूपेण विश्वात्मना प्रपञ्चरूपेण प्रतिभाति प्रतीयते, शुद्धः शुद्धस्वरूपोऽनन्तो मृत्युरहितः श्रुतिभिर्वेदैर्निगदितः प्रतिपादितः स नारायणः मां पातु ॥

भावार्थ—जो स्वयं प्रकाशस्वरूप, जिसके ज्ञान के लिए बाह्य भौतिक ज्ञान की अपेक्षा नहीं, जिसके ज्ञान से श्रेष्ठ बाह्य प्रपञ्चज्ञान नहीं, जो बोधस्वरूप दुःखरहित जन्म-मृत्यु-विहीन इस अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप से भासमान हो रहा है जो शुद्धस्वरूप अनन्त वेदों में कहे गये नारायण हैं वे हमारी रक्षा करें ॥३॥

यद्ज्ञानादखिलं प्रतीतिविषयं नैवाशु भात भवे—
द्रज्जौ सर्पवदात्मनि प्रविलयं सर्वं जगद्याति वै ।
शुद्धश्चित् सुखरूप एव श्रुतिमाञ्छ्रद्धा समाधानवान्
स्वस्मान्नान्यमपि प्रपश्यति सदा नारायणः पातु माम् ॥४॥

यस्य ज्ञानादिदं प्रतीतिविषयं दृश्यप्रपञ्चं आशु शीघ्रं नैव भातं प्रतीतं भवेत्, यस्मिन् ज्ञाते दृश्यप्रपञ्चस्याध्यासं न शिष्यते इत्यर्थः, इदं सर्वं जगच्च रज्जौ सर्पवदात्मनि प्रविलयं विलीनं भवति, यश्च शुद्धश्चिदानन्दस्वरूपः श्रुतिमान् वेद-प्रतिपादितो वेदयोनिर्वा, श्रद्धा समाधिविशिष्टः, सदा सर्वदा स्वस्मात्स्वात्मनोऽन्यं नहि पश्यति स नारायणः मां पातु ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म के ज्ञान होने पर इस दृश्य प्रपञ्च का अध्यास नहीं रहता, रज्जू में सर्प के समान यह समस्त जगत् आत्मा में विलीन हो जाता है, जो शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, वेदप्रतिपादित

अथवा वेदज्ञान का रचयिता, श्रद्धा तथा समाधिवाला सदैव काल अपनी आत्मा में अपने से अन्य कुछ वस्तु नहीं देखता, वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

जोवा ईश इदं जगद्बहुविधं कर्माणि तत्कर्तृता
भोक्ताभोग्यमथापि कर्मफलनं तन्निष्ठताभोक्तृता।
भोगासाधनसंहतिर्बहुविधा ज्ञानादि तन्निष्ठयन्
मायायाः कृतमेव सर्वमपि वै नारायणः पातु माम् ॥५॥

जीवाः प्राणिनः ईश ऐश्वर्यविशिष्टः, इदं बहुविधं नानारूपं जगत्, कर्माणि तेषां कर्मणां कर्तृता, भोक्ता, तस्य भोग्यपदार्थं, अथापि कर्मणां फलं, तेषां निष्ठता, भोक्तृता च, सर्वं जगद्भोगास्तेषां साधनसंहतिः साधनसमूहः, बहुविधानि ज्ञानानि तेषां निष्ठताऽऽसक्तिरेतत्सर्वं यत्र मायया कृतं दृश्यते स नारायणः मां पातु ॥ ५ ॥

भावार्थ—जीव ईश्वर नानारूप जगत्, कर्म और उनके कर्तृत्व, भोक्तृत्व, भोग्य पदार्थ, कर्मों का फल, कर्मों की आसक्ति, संसार के सकल भोग, उनके साधनसमूह, नाना प्रकार के ज्ञान, और उनकी आसक्ति, जिस ब्रह्म का ज्ञान होने पर यह समस्त मायाकृत प्रतीत होता है, वह भगवान् नारायण हमारी रक्षा करें ॥५॥

यद्ज्ञानाय हि लोकवित्तसुततो वै तृष्णयन्तोद्विजाः
संन्यस्यन्ति स्वदेहतोऽन्यदखिलं भेद्यं परं संश्रिताः।
वेदानां शिरसां विचारनिरता यत्प्राप्नुवन्तो बुधाः
शुद्धं नित्यनिरञ्जनं चितिसुखं नारायणः पातु माम् ॥६॥

यस्य ज्ञानाय लोकवित्तसुततो वै तृष्णयन्तस्तृष्णाविरहिताः सन्तः, उद्विग्नाः निर्वेदमापन्नाः संश्रिता ब्रह्माश्रयभूताः, वेदानां श्रुतीनां शिरसामुपनिषदादीनां विचारनिरता मननासक्ताः, यत् शुद्धं नित्यं निरञ्जनं चिदानन्दसुखस्वरूपं ब्रह्मप्राप्नुवन्तो वुधा मनीषिणः स्वदेहतोऽन्यदखिलं परं भेदभावं संन्यस्यन्ति स नारायणः मां पातु ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म के ज्ञान के लिए संसार धन, पुत्र, कलत्रादि की तृष्णा को त्यागते हुए, संसार से ग्लानियुक्त, ब्रह्म के आश्रय होकर, वेदादि शास्त्रों के विचारपरायण शुद्ध नित्य निरञ्जन, चिदानन्द सुख-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करनेवाले जो ज्ञानी अपनी देह से अन्य समस्त भेद-भाव को त्यागते हैं, वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥६॥

यद् ज्ञानाद्वितथं प्रपञ्चमखिलं पश्यन्ति संन्यासिनो
मायामात्रमनित्यमात्मनि मरौ पानीयवद्भासितम् ।
वेदैश्चाऽद्वय एक एव कथितः स्मृत्यादिभिः सर्वदा
शुद्धश्चित्सुखसत्स्वरूपभगवान् नारायणः पातु माम् ॥७॥

यस्य ब्रह्मणो ज्ञानात् संन्यासिनः त्यागनियुक्ता इदं वितथं विस्तृतं अखिलं समस्तप्रपञ्चं मरौ संस्थाने पानीयवद् भासितं मृगतृष्णासमं आत्मनि स्वान्तःकरणेऽनित्यं मायामात्रं मायाकल्पितं पश्यन्ति, यश्च वेदैः स्मृत्यादिभिश्च सर्वदाऽद्वयो द्वैतभावशून्यः एकः कूटस्थः शुद्धः सच्चिदानन्दसुखस्वरूपः कथितो निगदितः स नारायणः मां पातु रक्षत्वित्यर्थः ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म का ज्ञान होने पर त्यागी जन इस विस्तार-वाले समस्त प्रपञ्च को मृगतृष्णा के समान अनित्य तथा मायाकल्पित

देखते हैं, जो ब्रह्म वेद-स्मृतियों से सदा अद्वैत कूटस्थ शुद्ध सच्चिदानन्द सुखस्वरूप कहा गया है वह नारायण हमारी रक्षा करें॥ ७ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसर्वमपि वै यः कल्पयेन्मायया
विश्वं तैजसमात्मनात्मनि तथा प्राज्ञश्च यः कल्पयेत्।
माया मायि पृथग् न सर्वविदितो यस्मिन्न कस्मिन् वदेत्
शुद्धे सत्सुखचित्स्वरूपिणि परे नारायणः पातु माम् ॥८॥

यस्य ब्रह्मणो ज्ञाने ज्ञानी, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीत्याद्यवस्थाऽपि सर्वं मायया कल्पयेत् मायाकार्यं कल्पयति, तथा च प्रकाशस्वरूपमिदं विश्वमात्मना स्वेन आत्मनि स्वान्तःकरणे कल्पयेत्, तथा च ज्ञानिनो यस्मिन्न निर्वचनीयशुद्धे सच्चिदानन्दसुखस्वरूपे ब्रह्मणि माया मायि सर्वं पृथक् न विदितो वदेत् न विदितं भवति, अपितु सर्वं तस्मिन्नेव विदितं भवति, स नारायणः मां पातु ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म का ज्ञान होने पर ज्ञानी, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इत्यादि अवस्था और यह समग्र प्रकाशस्वरूप ब्रह्माण्ड अपने अन्तःकरण में माया का कार्य कल्पना करता है, और शुद्ध सच्चिदानन्द सुख-स्वरूप अनिर्वचनीय जिस ब्रह्म में माया तथा मायि सबको एकरूप देखता है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ ८ ॥

यो निद्रावशतो यथैतदखिलं स्वान्तर्गतं पश्यति
सामग्र्यादिविवर्जितं बहुविधं बोधे ह्यसद्बुध्यते।
सोऽयं सत्सुखचित्स्वरूपविमलः शुद्धः स्वरूपोऽक्रियः
तद्वत्स्वात्मनि पश्यतीदमखिलं नारायणः पातु माम् ॥ ९ ॥

यो ब्रह्म निद्रावशतः यथा एतदखिलं सामग्र्यादिविवर्जितं बहुविधं विश्वप्रपञ्चं स्वान्तर्गतमात्मगतं पश्यति पुनर्बोधे जाग्रति सति असन्मिथ्या बुध्यते ज्ञायते, तथा च यः सच्चिदानन्दसुखस्वरूपो विमलः मलरहितः शुद्धस्वरूपोऽक्रियः क्रियाशून्यः तद्वत् तथा इदमखिलं विश्वप्रपञ्चमात्मनि स्वस्मिन् पश्यति स नारायणः मां पातु।

भावार्थ—जिस प्रकार यह जीवात्मा निद्रा में इस संसार को अपने में सत्य देखता है और जागने पर मिथ्या मानता है, ऐसे ही जो ब्रह्म प्रलय समय इस विश्व को अपने में और सृष्टिकाल में भी इस असत् विश्व को अपने में ही भासित मानता है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ ९ ॥

यस्मिन् सत्सुखचित्स्वरूपिणि सदा शुद्धैकधावर्तिनि
मायाकार्यप्रतीतितो हि पुरतः स्वात्मैक निष्ठात्मनि।
जागृत्स्वप्नसुषुप्तिमद्बहुविधं विश्वाद्यशेषान्वितम्
मायाद्यं युगपत्प्रतीतिमगमन्नारायणः पातु माम् ॥१०॥

यस्मिन् सच्चिदानन्दसुखस्वरूपे शुद्धैकधावर्तिनि स्वात्मैकनिष्ठात्मनि ब्रह्मणि मायाकार्यप्रतीतितः पुरतः जाग्रत्-स्वप्नसुषुप्तिमद्बहुविधं विश्वाद्यशेषान्वितं मायाद्यं, युगपत् प्रतीतिं अगमत् स नारायणः मां पातु ॥१०॥

भावार्थ—जिस सच्चिदानन्द सुखस्वरूप एकरस आत्मनिष्ठावाले ब्रह्म में जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवाला यह समस्त माया का कार्य, प्रतीति से पूर्व था, पश्चात् समस्त एक ही बार प्रतीति को प्राप्त हुआ वह नारायण हमारी रक्षा करें ? ॥ १० ॥

ॐकारात्मकभूतभौतिकमिदं यस्मिन्परे लीयते
यस्मादुद्भवतीदमक्रियतनोः सच्चित्सुखैकात्मनः।
यस्मिन् वर्तत आत्मनीदमखिलं तत्त्वे त्वजे पूर्णके
स्वज्ञानैकवपुस्सनातनपदे नारायणः पातु माम् ॥११॥

यस्मिन् परे ब्रह्मणि ॐकारात्मकभूतभौतिकमिदं लीयते विलीनं भवति, यस्मात् क्रिया शून्यशरीरात् सच्चिदानन्दादिदमुद्भवति उत्पद्यते, यस्मिन्नजे जन्मरहिते पूर्णरूपके तत्त्वे तत्त्ववस्तुनि स्वज्ञानैकशरीरिणि सनातनपदे आत्मनि इदमखिलं वर्तते स नारायणः मां पातु ॥१॥

भाषार्थ—जिस परब्रह्म में यह भूत भौतिक समस्त जगत् लय होता है, जिस क्रिया-रहित सच्चिदानन्द से यह सकल सृष्टि उत्पन्न होती है, जिस अजन्मा पूर्णस्वरूप सनातन पद परमेश्वर में यह अखिल विश्व ठहरा हुआ है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

अध्यारोपनिषेधतो हि श्रुतयो यं बोधयन्त्योऽनिशम्
बुध्यन्तेऽपि च श्रोत्रियाद्धि विमलाद्ब्रह्मैकनिष्ठाद्गुरोः।
संसाराच्च बहिर्मुखाहि पुरुषा मोक्षाप्तिकामा भृशम्
वेदान्तैकविचारणा हि मुनयो नारायणः पातु माम् ॥१२॥

अवस्तुनि वस्त्वारोपः अध्यारोपस्तस्य निषेधोऽध्यारोपनिषेधस्तस्मात् "पञ्चम्यर्थे तसिल्" यं ब्रह्मश्रुतयो वेदा अनिशं सर्वदा बोधयन्ति, ज्ञापयन्ति, अपि च संसाराद्बहिर्मुखा विरक्ता मोक्षप्राप्तिकामा मुमुक्षवो वेदान्तैकविचारणा वेदान्तिनो मुनयो मननशीलाः पुरुषाः, यं ब्रह्म श्रोत्रियाद्वेदज्ञाद्विमला-

त्कषायशुद्धाद्ब्रह्मैकनिष्ठाद्ब्रह्मपरायणाद्गुरोर्दीक्षकाद्बुध्यन्ते जानन्ति स नारायणः मां पातु ॥१२॥

भावार्थ—असत् संसार में सत्य ब्रह्म का आरोप कर फिर संसार की असत्यता के निषेधवाक्यों से श्रुति जिसके नित्य बोधन करती है, और संसार से विरक्त मोक्ष की इच्छावाले वेदान्ती पुरुष जिस ब्रह्म को वेदज्ञ ब्रह्मनिष्ठ गुरुवों से जानते हैं वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

योऽयं सर्वविभूतिमान् हि भगवान् शक्त्यास्वया विद्यते
एकोऽजोऽचल इन्द्रियादिरहितोऽनेकश्चलो जन्मवान् ।
भोक्ता चेन्द्रियवान् हि सर्वजगदाकारेण यो दृश्यते
शुद्धोऽनादिनिरञ्जनोऽद्वयतनुर्नारायणः पातु माम् ॥१३॥

य अयं सर्वविभूतिमान् सकलैश्वर्यसम्पन्नो भगवान्, स्वया शक्त्या विद्यते, य एकोऽनेकश्च, अजो जन्मवाँश्च चलोऽचलश्च, इन्द्रियादिरहित इन्द्रियवाँश्च, भोक्ता च, यः शुद्धः शुद्धस्वरूपोऽनादिर्जन्मरहितो निरञ्जनो दुःखविहीनोऽद्वयतनुर्द्वैतभावशून्यः सर्वजगदाकारेण सकलप्रपञ्चरूपेण दृश्यते, स नारायणः मां पातु ॥

भावार्थ—जो यह समस्त ऐश्वर्ययुक्त भगवान् अपनी शक्ति से विद्यमान है, जो एक और अनेक जन्मवाला और जन्मरहित, अचल और चलायमान, इन्द्रियादिरहित, तथा इन्द्रियवाला होकर समस्त भोगों का भोक्ता, शुद्धस्वरूप जन्मरहित, दुःखविहीन, अद्वैत समस्त संसार के रूप से भासमान हो रहा है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥

यस्मिन् कारणकार्यरूपमखिलं विश्वन्नु किञ्चित्कदा
माया कल्पितमेवमेतिपुरतो भाति स्वमोहैकतः ।
बालानां हि यथा खमेव मलिनाकारादितामीयते
सत्ये चित्सुखरूपकेऽद्वयपदे नारायणः पातु माम् ॥ १४ ॥

सत्ये चिदानन्दस्वरूपके द्वैतभावशून्ये यस्मिन् ब्रह्मणि कार्यकारणरूपमेतदखिलं विश्वं, किञ्चित् कदा एवं मायाकल्पितं एति, स्वमोहैकतः पुरतो भाति, यथा बालानां खम् मलिनाकारादितां ईयते, स नारायणः मां पातु ॥१४॥

भाषार्थ—जिस चिदानन्दस्वरूप अद्वैत ब्रह्म में, यह कार्यकारण रूपसकल ब्रह्माण्ड, अपने अज्ञान से ऐसा मायाकल्पित प्रतीत हो रहा है जैसे अज्ञानियों को आकाश नीला प्रतीत होता है, वह नारायण हमारी रक्षा करें ? ॥१४॥

यः शक्त्या जगदाकृतिर्भवति वै भावाद्यशेषैर्युतः
शुद्धस्तन्निरुपद्रवैकविषयो निर्विक्रियोऽशेषदृक् ।
चैकोऽजोऽद्वयनिश्चलोऽन्तरहितोऽनूर्मिसदैकात्मवान्
सत्यानन्दचिदात्मनिष्क्रियवपुर्नारायणः पातु माम् ॥१५॥

यो नारायणः भावादिनामशेषैः समस्तैर्युतः शुद्धो निरुपद्रवैकविषयो निर्विकारी, अशेषदृक् समस्तद्रष्टा, एकोऽजो निश्चलोऽन्तरहितोऽनन्तोऽनूर्मिर्निस्तरङ्गः सदा एकात्मवान्, सत्यानन्दश्चिदात्मा, क्रियाशून्यशरीरः शक्त्या स्वमायया जगदाकृतिर्जगद्रूपेण भवति स नारायणः मां पातु ॥१५॥

भावार्थ—जो नारायण अपने समस्त भावों से पूर्ण शुद्ध निर्विघ्न निर्विकारी, समस्त विश्व का द्रष्टा, एक अजन्मा, निश्चल अन्त-रहित क्रियाशून्य सत्यानन्द चिदाकार, क्रियाओं से रहित शरीरवाला, समस्त संसार का स्वरूप होता है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥१५॥

यद्बोधार्थमनुश्रवाहि सकलाः सर्वाणि सूत्राणि वै
सर्वाण्येव तपांसिधर्मनिचयाः शास्त्राणि सर्वाणि च ।
संसारस्थितिस्वीकृताविति स्वतः सत्यश्चिदानन्दको
नित्योऽजोऽद्वयरूपवान्निगदितो नारायणः पातु माम् ॥१६॥

यद्बोधार्थं यस्य ब्रह्मणो ज्ञानार्थं सकला अनुश्रवाः सर्वाणि पुराणानि सर्वाणि सूत्राणि च, सर्वाण्येव तपांसि, सर्वे धर्मनिचया धर्मसमूहाः शास्त्राणि च सर्वाणि सन्ति, तथा संसारस्य स्थितेः स्वीकृतौ यः सत्यश्चिदानन्दो नित्योऽजोऽद्वयरूपवान्निगदितः श्रुतिभिः प्रतिपादितः स नारायणः मां पातु ॥१६॥

भावार्थ—जिस ब्रह्म के ज्ञान के लिए सारे पुराण, सारे सूत्र, समस्त तप, सकल धर्मों के समूह, तथा सारे शास्त्र हैं, और जगत् का अस्तित्व स्वीकार करने में जो सत्य चिदानन्द, नित्य अज अद्वैत रूप-वाला वेदों ने प्रतिपादित किया है वह नारायण हमारी रक्षा करें ॥१६॥

नारायणस्तुतिरियं नारायणपदाब्जयोः ।
पूजापद्मायतामेनां शृणोतु कृपया प्रभुः ॥१७॥

नारायणस्येयं स्तुतिः स्तोत्रं, नारायणपदाब्जयोर्नारा-यणचरणकमलयोः पूजायाः वा पूजायां पद्मायतां पुष्पो-

पहारो भवतु तथा च प्रभुर्नारायणः कृपयाऽनुग्रहेण शृणोतु, आकर्णयतु ॥१७॥

भावार्थ—हे नारायण आपकी यह स्तुति आपके चरणकमल में पूजा समय अथवा पूजा का पुष्पोपहार हो, तथा हे प्रभो कृपा कर हमारी इस प्रार्थना को आप सुनिए ॥१७॥

पठतां शृण्वतामेतामच्युताश्रमनिर्मिताम् ।
ददातु मनसोऽभीष्टं, हरिः सच्चित्सुखात्मकः ॥१८॥

अच्युताश्रमस्वामिभिर्निर्मितां रचितामेतां स्तुतिं पठतां पाठङ्कुर्वतां, शृण्वतां कर्णगोचरङ्कुर्वतां, सच्चित्सुखात्मकः सच्चिदानन्दस्वरूपो हरिर्नारायणः मनसोऽभीष्टं मनोरथं ददातु वितरतु इति यावत् ॥ १८ ॥

भावार्थ—सच्चिदानन्दस्वरूप हरि भगवान् श्री० १०८ स्वामी अच्युताश्रमजी की रचना की हुई इस स्तुति को पढ़नेवाले और सुनने-वालों का मनोरथ पूर्ण करें । ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥१८॥

जेहि विरंचि मम गुरु पुरा करुणा करि मोहि दीन्ह ।
मातु कृपातें यत्न करि सर्व प्रकाशित कीन्ह ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमत्पुरुषोत्तमाश्रमशिष्य श्रीमदच्युताश्रमस्वामिविरचितमर्थदीपिकासहितं नारायणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

——